International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

हिन्दी पत्रकारिता के विकास में पुण्य प्रसून वाजपेयी का योगदान

रूपेश शर्मा

शोधार्थी

किसी क्षेत्र के सम्पूर्ण परिदृश्य में किसी व्यक्ति विशेष के योगदान का मूल्यांकन करते समय अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता होती है। पत्रकारिता भी इस तरह के मूल्यांकन से अलग नहीं है, ''या तो हम अत्यधिक पुरातन मूल्यों को लेकर पत्रकारों से मिशनरी कामों की उम्मीद करने निकलते हैं या फिर सारे मूल्यबोध भुलाकर बाजार– तकनीक और सत्ता की बहती त्रिवेणी में डुबकी लगाने लगते हैं।''[1]

पुण्य प्रसून वाजपेयी ने हिन्दी पत्रकारिता के प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक, दोनों ही माध्यमों के जरिए अपना योगदान दिया है। 'प्रिंट से विजुअल मीडिया तक इन्होंने नक्सली जमीन से लेकर कश्मीर की वादियों में लगने वाले आजादी के नारों का सच कई तरह से कई बार रिपोर्टों में उभारा। इसी दौर में लोकमत समाचार, चाणक्य, संडे ऑब्जर्वर, संडे मेल, दिनमान टाइम्स, जनसत्ता सरीखे समाचार पत्रों में काम किया। [2]

प्रिंट में अपने बेहतरीन कार्य के उपरान्त पुण्य प्रसून वाजपेयी "1996 में टीवी समाचार चैनल **'आज तक'** से जुड़े। दिसम्बर, 2000 में **'आज तक'** के 24 घंटे का न्यूज चैनल होने के बाद पहली बार पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर 'पीओके' से रिपोर्ट। एलओसी पार आतंकवादी कैम्पों की हकीकत और लश्कर–ए–तोएबा के मुखिया मो. हाफिज सईद का इंटरव्यू लिया। जनवरी, 2003 से अप्रैल, 2004 तक **'एनडीटीवी इंडिया'** न्यूज चैनल की शुरुआत से जुड़े। एंकरिंग और इंटरव्यू प्रोग्राम कशमकश के जरिए टीवी पत्रकारिता में नायाब प्रोग्राम की शुरुआत की। दोबारा **'आज तक'** में लौटे।[3]

पुण्य प्रसून का पत्रकारीय सफर मीडिया के लगातार बदलते स्वरूप के मध्य चलता रहा है। स्वाभाविक है कि इस दौर में एक रिपोर्टर के लिए भटकाव के खतरे भी बहुत थे। "राजनीतिक समझ की नहीं राजनेताओं से संबंध की जरूरत ही रिपोर्टर को विशेष संवाददाता और धीरे–धीरे संपादक बना दे तो फिर दर्शकों को क्या देखने को मिलेगा, यह समझा जा सकता है। इसलिये हिन्दी के राष्ट्रीय न्यूज चैनलों को देखते हुये हर किसी के जहन में यह आ सकता है कि देश को तो वाकई एक राष्ट्रीय न्यूज चैनल की जरूरत है जो सही मायने में खबरों की पड़ताल करे। किसी भी खबर पर जनमत तैयार करने की स्थिति को पैदा करे। जो सरकार पर निगरानी का काम भी करे और लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ के रूप में **'चौक एंड बैलेंस'** की भूमिका में रहे जिसमें काम करने वाले पत्रकार को अपनी जिम्मेदारी का भी एहसास हो और गर्व भी करें कि वह राष्ट्रीय न्यूज चैनल में काम कर रहा है और देखने वाले भी खबरों को विश्वसनीय मानें। यानी देश में साख हो।[4]

स्वतंत्रता आंदोलन में भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना की। आधार भूमि तैयार करने वाली पत्रकारिता आजादी के 60 वर्षो के बाद आर्थिक उदारीकरण, भूण्डलीकरण के नाम पर नई सूचना प्रौद्योगिकी के सोपानों पर चढ़कर नये विश्व गांव का निर्माण कर रही है। ''

वर्तमान में पत्रकारिता का अथ महज समाचार पत्र हो नहीं है। अब इसमें रेड़ियों, दूरदर्शन, केबल उपग्रहीय सभी माध्यम शामिल हो गये हैं और जर्नलिज्म मास मीडिया में बदल चुका है। पत्रकारिता के उद्देश्य बड़ी तेजी से बदले हैं। पुनर्जागरण, राष्ट्रीय अस्मिता, औद्योगिकरण, आधुनिक राष्ट्र का निर्माण जैसे बदलते लक्ष्यों–उद्देश्यों को हिन्दी पत्रकारिता अपना केंन्द्रीय विषय बनाती रही हैं।[5]

बदलते लक्ष्यों–उद्देश्यों के बीच संचार क्रांति का कोई निश्चित स्वरूप बता पाना भी आसान नहीं होता। 'मास मीडिया के हमारे कथित सिद्धांतकार हों या फिर सुधीश पचौरी, जबरीमल पारख, सुभाष धूलिया, जगदीश्वर चतुर्वेदी सरीखे ज्यादा चौकस हिन्दी लेखक – अध्यापक, उन सबका लेखन और चिन्तन अभी इस संचार क्रांति को समझने–बूझने में बौना है।[6]

संचार क्रांति को समझने–बूझने का दौर है, तो पत्रकारों की बदलती छवि भी अलग तरह का संदेश देती है। 'आज इसमें कोई शक नहीं है कि समाज में हिन्दी पत्रकार के नाम पर खादी के कुर्ते–पाजामे में किसी दाढ़ी–धारी सज्जन का चेहरा ध्यान में आ जाता था। आप अगर याद करें तो हिन्दी सिनेमा में पत्रकारों का किरदार इसी रूप में परदे पर आता था। पैरों में कोई कोल्हापुरीनुमा चप्पल, हाथ में एक नोटबुक और कलम। कुल मिलाकर आजादी के बाद के भी 50 सालों तक लगभग पत्रकार की यही संघर्षशील तस्वीर उभरती थी। आज यह कहा जा सकता है कि हिन्दी समाज में पत्रकार और पत्रकारिता की इस पहचान में काफी हद तक बदलाव आ चुका है।[7]

पत्रकार की छवि में बदलाव है, तो स्वयं पत्रकारिता का ओज भी बदला है। हम यह जानते हैं कि आधुनिक हिन्दी गद्य का जन्म हिन्दी पत्रकारिता के कोख से ही हुआ था–तभी तो इस गद्य में ओज था, क्रांतिकारी तेवर थे और थी लोकहितकारी बदलाव की ललक और तड़प । यह सब जांच–परख कर ही 'निराला' ने हिन्दी गद्य को 'जीवन संग्राम' की भाषा कहा था। 'क्या आज की हिन्दी पत्रकारिता की भाषा को हम जीवन, समाज, आधुनिकता और प्रयोजन की भाषा के रूप में सम्पूर्णता या समग्रता के साथ विश्लेषित करने का प्रयत्न कर रहे हैं?

उसके वैशिष्ट्य अथवा सीमाओं का विवेचन कर रहे हैं? नव–प्रयोगों, नवीन सह–सम्बंधों और 'रचनात्मक टटकेपन' का जो भण्डार हिन्दी पत्रकारिता हमें दे रही है, उसे संजो रहे है? अफसोस कि इन प्रश्नों के उत्तर नकारात्मक ही होंगे।[8]

तस्वीरों को शब्दों की ताकत :

पुण्य प्रसून वाजपेयी का अधिकतर समय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया साथ व्यतीत हो रहा है। उन्हें टीवी चैनलों की साख की चिंता हमेशा सताती रही है। असल सवाल यहीं से शुरू होता है कि आखिर हिन्दी के राष्ट्रीय न्यूज चैनलों का स्तर लगातार गिर क्यों रहा है। अगर भूत–प्रेत या तमाशा से निजात मिलता भी है तो राजनीतिक या सामाजिक खबरें भी किसी तमाशें की तरह क्यों सामने रखी जाती हैं। खबर बताने की जल्दबाजी या तेजी से बताने की सोच हर खबर को ब्रेकिंग न्यूज तले चलाते हुए क्या खबरों को लेकर न्यूज चैनलों की साख बरकरार रखी जा सकती है।[9]

खबरों की साख के लिए विजुअल्स और स्क्रिप्ट के बीच बेहतर सामंजस्य जरूरी है। पत्रकार समझते हैं कि टीवी–समाचारों में तस्वीरों का महत्व बहुत अधिक है, फिर भी एक सीमा के बाद उन तस्वीरों को भी भाषाभिव्यक्ति की महती आवश्यकता होती है। 'दरअसल मूक तस्वीरें या किसी घटनास्थल पर चिल्ल–पों आवाजों के बीच चलती–फिरती – बोलती तस्वीरें समूची कहानी नहीं कहतीं। इन तस्वीरों को शब्द चाहिए। ठीक उसी तरह जैसे कोई 'हीरा' तब तक बेनूर है जब तक उसे सोने के हार में न जड़ा जाय।[10]

आज की हिन्दी पत्रकारिता की भाषा समाचारों के अनुकूल प्रभावशाली शब्दों का प्रयोग कर रही है। पुण्य प्रसून वाजपेयी हिन्दी की इस ताकत से परिचित हैं। "पत्रकारिता के विभिन्न व्यवहार क्षेत्रों (डोमेंस), इनमें प्रयुक्त हिन्दी भाषा के विविध रूपों और मानक हिन्दी की लचीली प्रकृति (फ्लेक्सेबल नेचर) से परिचित नहीं हैं तो बिला शक पत्रकारिता की भाषा पर हमारी चर्चा किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकती।[11]

पत्रकारिता की भाषा पर चर्चा भी ठीक उसी तरह है, जैसे पत्रकार की चर्चा। पत्रकार को सिर्फ मिशनरी अथवा मात्र तकनीकी सहचर मानकर नहीं चल सकते। उसी तरह भाषा के संदर्भ में भी विचार करना होता है। स्वयं पुण्य प्रसून वाजपेयी इस ओर से सचेत दिखते हैं। "प्रिंट पत्रकारिता में जिस तरह कन्टेंट को ही किंग माना जाता है, ठीक उसी तरह टीवी में विजुअल को कभी भाषा की दरकार होती नहीं है। लेकिन जब दौर चौबीस घंटे और सातों दिन न्यूज चैनल चलने का हो तो सबसे बड़ा सवाल यही होता है कि आखिर भाषा हो कैसी ? क्योंकि भाषा अगर तकनीक के पीछे चली तो फिर सरोकार खत्म होता दिखेगा और अगर भाषा तकनीक से इतनी आगे निकल गयी कि उसके सरोकार तकनीक को ही खारिज करते दिखे तो फिर खबरें किसी अखबार या साहित्य के लपेटे में आती दिखेंगी।[12]

तकनीक और भाषा के बीच सामंजस्य बनाये रखना निश्चित ही आज एक समस्या बनती जा रही है। भारत में हिन्दी – पत्रकारिता का इतिहास लगभग 190 वर्ष पुराना है। इन वर्षों में हिन्दी पत्रकारिता में मिशन की जगह अब व्यवसायिकता इस कदर हावी होती जा रही है कि इसके अस्तित्व और सत्व पर ही संकट के बादल मंडराने लगे हैं। अगर यही स्थिति रही तो वह दिन दूर नहीं जब देवनागरी लिपि की जगह रोमन लिपि में हिन्दी का समाचार–पत्र छपने लगेगा। इसकी शुरुआत नवभारत टाइम्स ने देवनागरी लिपि की जगह रोमन लिपि के अक्षरों और शब्दों से कर दी है। यह शुभ संकेत नहीं है।[13]

रोमन लिपि का प्रयोग अथवा हिन्दी समाचारों में अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल एक तर्क के आधार पर किया जा रहा है। साहित्य और पत्रकारिता का तारतम्य कब कैसे टूटा और कैसे संवाद की भाषा शहरी मिजाज के साथ पत्रकारिता ने अपना ली इसके लिए कोई खास वक्त की लकीर तो खिंची नहीं जा सकती।'"यह कहा जा सकता है कि 1991 के बाद जब सत्ता ने ही कल्याणकारी राज्य की जगह उपभोक्तावादी राज्य की सोच अपना ली वैसे ही सत्ता की नीतियां उन नागरिकों से भी हट गयी जो उपभोक्ता नहीं थे। और शायद इसी दौर में पहले अंग्रेजी अखबारों से हिन्दी अखबारों में अनुवाद का चलन और उसके बाद निजी समाचार चैनलों के जरिये हिंग्लिश को अपनाना।[14]

पुण्य प्रसून के तर्कों से साबित होता है कि सोच उपभोक्ताओं को लेकर ही जागी। पत्रकारिता को भी लगा कि उसके उपभोक्ता जिस भाषा को सरलता से बोलते हैं, उसी भाषा को पत्रकारिता भी अपना ले तो ज्यादा जल्दी पाठकों से जुड़ा जा सकता है। इस जल्दबाजी

में गड़बड़ियां भी स्वाभाविक हैं। स्वय वाजपेयी पर भी लेखन में अशुद्धियों के आरोप लगते रहे हैं। कुछ जगह उनकी तुलना रवीश कुमार से की गई है। पुण्य प्रसून वाजपेयी की तरह रवीश कुमार भी हिन्दी समाचार चैनलों का एक बड़ा चेहरा हैं। कहा गया है कि दोनों ही क्रांतिकारी हैं। "न्यूजरूम से राजनीतिक बहसबाजी के अलावा बीच–बीच में दोनों ही सरोकारी पत्रकार के अपने कर्तव्य का भी निर्वहन करते रहते हैं। फिर भी दोनों की लेखनी में बड़ा अंतर है। रवीश कुमार गोल–मोल लिखते हैं तो पुण्य प्रसून वाजपेयी सीधे–सीधे हल्ला बोल वाली शैली में लेखन करते हैं। वैसे दोनों ही टीवी न्यूज स्पेस की तरह यहां भी एक–दूसरे को कड़ी टक्कर देते हैं, लेकिन भाषा के मामले में पुण्य प्रसून वाजपेयी पूरी तरह से मात खा जाते हैं।[15]

कुछ पत्रकारों ने पुण्य प्रसून वाजपेयी की भाषाई अशुद्धियों की ओर ध्यान खींचा है। ''भाषाई रूप से इतनी गलती करते हैं। कि कई बार आश्चर्य होता है कि ये कैसे इतने बड़े पत्रकार बन गए? क्या कभी किसी ने इनकी कॉपी चेक नहीं की। दरअसल जैसे जुमलों के साथ स्त्रीलिंग–पुल्लिंग, 'कि–की' जैसी साधारण गलतियों की इनके लेख में भरमार रहती है और सालों से टोका–टोकी के बावजूद ये कोई सुधार नहीं लाते और वही गलतियाँ बार–बार दुहराते रहते हैं। लेख की छोड़िये, ट्विटर आदि पर दो लाइन लिखने में भी ये शुद्धता नहीं बरतते । कल ही का उदाहरण लीजिए। उन्होंने मीडिया की आलोचना करते हुए एक ट्वीट किया, लेकिन इसमें भी मीडिया गलत लिखा। 'मीडिया' की जगह 'मिडिया' लिख दिया। कम–से–कम जिस पेशे में हैं उस पेशे का नाम तो ठीक से लिखें, इतने बड़े पत्रकार से इतनी तो आशा की ही जा सकती है।[16]

व्यक्ति ही नहीं, समाचार पत्रों में भी यदा–कदा अशुद्धियां स्पष्ट लक्षित होती हैं। ऐसा भूलवश अथवा लेखकों के मनमाने प्रयोग के कारण होता रहा है। ''कुछ व्यक्ति अपनी मान्यताओं के अनुसार हिन्दी वर्तनी और वाक्य रचना का प्रयोग करते हैं, तो कुछ इनकी एकरूपता और वैज्ञानिकता से लापरवाह होकर हिन्दी वर्तनी को मनमाना रूप दे रहे हैं और वाक्य – रचना की व्याकरणिकता की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं।[17]

एक अध्ययन के अनुसार ''नवभारत टाइम्स में अशुद्ध वाक्य रचना वाले शीर्षक की संख्या कुल शीर्षकों का 1.5 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त वर्तनी व विराम चिन्ह सम्बंधी अशुद्धियों का प्रतिशत समतुल्य है। यदि वर्तनी, वाक्य–रचना और विराम चिन्ह सम्बंधी अशुद्धियों को समेकित रूप से देखा जाय तो कुल शीर्षकों का 3.5 प्रतिशत अशुद्ध है। ''दैनिक भास्कर'' और ''नवभारत टाइम्स'' में तत्सम एवं विदेशी भाषाओं से आयत शब्दों के प्रयोग में अधिक अंतर नहीं पाया गया। शंकर शब्दों का प्रयोग सभी समाचार–पत्रों में लगभग समान पाया गया। संक्षिप्त रूपों के प्रयोग की स्थिति भी लगभग ऐसी ही है।[18]

पुण्य प्रसून वाजपेयी भाषा को हमेशा अभिव्यक्ति की कसौटी पर ही परखते हैं। उनके मुताबिक पाठकों–श्रोताओं तक सहज रूप से पहुंचने वाली भाषा ही आदर्श हो सकती है। ''हो सकता है यह चलताऊ भाषा हो। हो सकता है यह हिंग्लिश हो। हो सकता है आज की पीढ़ी की व्याकरण का मर्सिया गाने वाली भाषा हो। लेकिन यह सभी मान्य तभी होंगी जब वह खबर हो और उसके आगे–पीछे खबर की समूची कहानी कहने वाली मीठी सरल हिन्दी हो। इस मीठेपन में न्यूक्लियर समझौते पर अमेरिकी से लेकर राहुल की कलावती के

संवेदनशील सियासत की समझ भी होनी चाहिये और अन्ना हजारे के आंदोलन पर संसदीय सियासत के भ्रष्टाचार से लेकर अन्नागिरी का तत्व भी समझ में आना चाहिये।[19]

पिछले कुछ वर्षों में पत्रकारिता की भाषा में अनेक बदलाव हुए हैं और यह बदलाव अधोमुखी हैं। एक समय था, जब पत्रकारिता में भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य शिवपूजन सहाय, पंडित नलिन विलोचन शर्मा, बालमुकुंद गुप्त, विष्णुराव पराड़कर, माखनलाल चतुर्वेदी, माधवराव सप्रे, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि हिन्दी के उन्नायक और अग्रणी हस्ताक्षर सक्रिय थे।

भाषा के मानकीकरण में कतिपय कालजयी व्यक्तित्वों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। "इन लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने हिन्दी – पत्रकारिता की गरिमा और प्रतिष्ठा को स्थापित किया। अब स्थितियां बदल गई हैं। आज के अधिकतर पत्रकारों की भाषा भ्रष्ट हो गई है। आज महत्व इस बात का हो गया है कि समाचार आप किस त्वरित गति से संप्रेषित करते हैं। इस बात की महत्ता गौण हो गई कि आप कितना शुद्ध प्रकाशित कर रहे हैं। आज अपाणिनीय प्रयोग किसी पत्रकार को कचोटते नहीं हैं।[20]

जन सरोकारों के संप्रेषण को वरीयता :

पुण्य प्रसून वाजपेयी की पत्रकारिता में भाषायी असावधानियां सम्भवतः पहले से ही रहीं। रिपोर्ट में भावाभिव्यक्ति की ताकत को देखते हुए सम्पादकों ने इस कमी को दूर करने की कोशिश की।

''शंकरगुहा नियोगी की हत्या के बाद खुद–ब–खुद ही रायपुर–राजहरा और दिल्ली के चक्कर लगाकर लौटा तो एनएन विनोद ने सिर्फ इतना ही कहा कि पूरा एक पन्ना नियोगी पर निकालो। जो भी देख कर आये कागज पर लिखो। और मेरे सीनियर को यही हिदायत दी कि व्याकरण ठीक कर देना। विचार नहीं। और जब पूरा पेज शंकरगुहा नियोगी पर निकला और उसे मैंने जनसत्ता के संपादक प्रभाष जोशी को भेजा तो दिल्ली में मुलाकात के वक्त उन्होंने इतना ही कहा। हमारे लिये भी ऐसे मौकों पर लिख दिया करो। हौसला बढ़ा तो उसके बाद दिल्ली के अखबार को ध्यान में रखकर भी लिखना और मुद्दों को समझना शुरू किया।[21]

उपर्युक्त प्रसंग में भी पुण्य प्रसून की लेखनी का सत्यांश परिलक्षित होता है। यहां भी मात्रिक अशुद्धियां तो हैं, परन्तु प्रथम दृष्ट्या भाषायी कमियों की जगह अभिव्यक्ति की ताकत ही
दृष्टिगत होती है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि पुण्य प्रसून वाजपेयी को परिष्कृत हिन्दी में विचार प्रकटीकरण पर कोई संशय है। उन्हें अहसास है कि अखबार या हिन्दी पत्रिकाओं के सामने न्यूज चैनल तो किस्सागोई से चल सकते हैं। लच्छेदार भाषा से चल सकते हैं, लेकिन अखबारों का क्या करें। जाहिर है, इस दायरे में "फणीश्वरनाथ रेणु की पटना में आई बाढ़ पर छपी दिनमान की रिपोर्टिंग को पढ़ना चाहिये। इस लेखन को लेकर राजकमल प्रकाशन ने ऋणजल–धनजल नामक किताब भी छापी है। वैसे साहित्यकारों की पत्रकारिता का मिजाज धर्मयुग, दिनमान, रविवार, साप्ताहिक हिन्दुस्तान सरीखी पत्रिकाओं में 70–80 के दशक में देखी जा सकती है। जहां यह साफ लगता है कि साहित्य पत्रकारिता से कई कदम आगे चलता है। लेकिन उपभोक्ता संस्कृति के दौर में साहित्य की धार में भोथरापन आया

और पत्रकारिता राजनीतिक सत्ता के मोहजाल में फंसी तो उसकी भाषा भी कहीं उपभोक्ता तो कहीं मुनाफा तो कहीं सत्ता की मलाई खाने वाली हो गई।[22]

पुण्य प्रसून वाजपेयी बातचीत और व्याख्यानों में भी भाषा के बदलते स्वरूप की चर्चा करते हैं। उनका मानना है कि चापलूसी या पेट भरी भाषा के जरिये उस बहुसंख्यक समाज से संवाद बनाना बेहद मुश्किल है जो लगातार विकल्प की तलाश में भटक रहा है। बहुसंख्यक समाज से संवाद का सर्वोत्तम तरीका यही हो सकता है कि उसके मुद्दों को छुआ जाय। "संयोग से छब्बीस बरस पहले भी मेरे जहन में नागपुर की तस्वीर तीन कारणों से बनी थी। पहली, संघ का हेडक्वार्टर नागपुर में था। दूसरा बाबा साहेब अंबेडकर के सामाजिक–राजनीतिक प्रयोग की जमीन नागपुर थी और तीसरा आंध्र प्रदेश से निकलकर महाराष्ट्र के विदर्भ में नक्सलवाद की आहट पीपुल्सवार ग्रुप के जरिये सुनायी दे रही थी। तीनों हालात वक्त के साथ कई ज्यादा तीखे सवालों से समाज को भेदेंगे। यह मेरे जहन में दिल्ली से नागपुर के लिये निकलते वक्त भी था।[23]

पुण्य प्रसून ने हिन्दी की उन विशेषताओं को आत्मीयता के साथ महसूस किया है, जहां अभिव्यक्ति को प्रमुखता मिलती है। उन्होंने अपने पूर्व के हिन्दी पत्रकारों से बहुत कुछ सीखा है। ऐसे ही स्वनामधन्य पत्रकारों में प्रभाष जोशी भी शामिल थे। ''प्रभाष जोशी अंग्रेजी पत्रकारिता के वर्चस्व और प्रभुत्व से कभी प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने 'जनसत्ता' को ऐसी धार दी कि हिन्दी का यह अखबार अंग्रेजी पत्रों पर भारी पड़ गया। वह देशभर के सोचने–विचारने वाले और जन साधारण के प्रति संवेदनशील लेखकों–विचारकों का मंच बन गया। समाज से जुड़े यथार्थ और ठोस मुद्दे उन्होंने उठाए। जन आंदोलनों को अखबार में महत्व दिया।[24]

जन आंदोलनों की पक्षधरता हिन्दी पत्रकारिता को बहुत भारी पड़ी है। इसे बार–बार मुसीबतों का सामना करना पड़ा है। ''मेरी स्पष्ट मान्यता है कि आपातकाल के दौरान भारतीय प्रेस पर जो हमले 'सेंसरशिप' की आड़ में सरकार द्वारा किये गये, उन्हीं की जबरदस्त सकारात्मक प्रतिक्रिया पत्रकारिता विशेषतः हिन्दी पत्रकारिता के गौरव तथा विस्तार की सशक्त आधार भूमि बनी है। अंग्रेजी पत्रकारिता को आपातकाल में अपेक्षाकृत कम दमन सहना पड़ा, चूंकि वह 'मासेज' यानी जनता के साथ कम और 'क्लासेज' यानी उच्च एवं अभिजात्य वर्ग के साथ अधिक जुड़ी हुई थी।[25]

'क्लासेज' और 'मासेज' के साथ जुड़ने का फर्क बदस्तूर जारी है। यह अंग्रेजी पत्रकारिता में ही नहीं, हिन्दी पत्रकारिता में भी विद्यमान है। "जितने कैमरे, जितनी ओबी वैन, जितने रिपोर्टर और जितना वक्त सानिया–शोएब निकाह को राष्ट्रीय न्यूज चैनलों में दिया गया, उसका दसवां हिस्सा भी दंतेवाड़ा में हुये नक्सली हमले को नहीं दिया गया। 6 अप्रैल की सुबह हुये हमले की खबर ब्रेक होने के 48 घंटे के दौर में भी नक्सली हमलों पर केन्द्रित खबर से इतर आएशा और शोएब के तलाक को हिन्दी के राष्ट्रीय न्यूज चैनलों ने ज्यादा महत्व ही नहीं दिया बल्कि अगुवाई करने वाले टॉप के राष्ट्रीय न्यूज चैनलों ने यह भी जरूरी नहीं समझा कि दिल्ली से किसी रिपोर्टर को दंतेवाड़ा भेज ग्राउंड जीरो की वस्तुस्थिति को सामने लाया जाए।[26]

आखिर क्या है कि चैनलों में जन संघर्षों की खबरें कम जगह पाती हैं। देखने में आता है कि आपातकाल जैसा भय आज के पत्रकारों से बहुत दूर है। जो भयभीत हैं, वे अलग तरह के हैं। ''पिछले दिनों इलाहाबाद में पत्रकारिता पर राष्ट्रीय सम्मेलन था, जिसका विषय

था– 21वीं सदी में पत्रकारिता की चुनौतियां, यहां एक साथ दो चीजें दिखाई दीं। भयभीत पत्रकार और डराने वाले लोग। कुछ पत्रकारों में डर को दूर करने की कोशिश भी दिखाई दी। यह डर किसी गुंडे, प्रशासक या व्यापारी का नहीं था, बल्कि मार्केट फोर्सेज का था। 21वीं सदी में पत्रकारिता को सबसे बड़ी चुनौती पत्रकारों से है, उनसे जो बदलना नहीं चाहते। यही वह तबका है जो प्रतिस्पर्धा से डरता है और लोगों को डराता है। कारण कि मार्केट फोर्सेज ने काम करना शुरू किया तो इन्हें भी काम करना पड़ेगा और इनकी मठाधीशी खतरे में पड़ जायेगी।[27]

जो पत्रकार प्रतिस्पर्धा से भयभीत नहीं हैं, जन सरोकारों को अभिव्यक्ति दे रहे हैं उनकी अपनी विशेष भाव–भंगिमा है। "इस नई पीढ़ी की जो वह खास भंगिमा है– या उसकी उन्हीं के मुहावरे में कहूं तो जो खास तेवर हैं, वास्तव में उसमें अनास्था है नहीं। उनमें तकलीफ है और यह आशा की बात है कि अगर वे अनास्था प्रकट करते हैं तो तकलीफ भी उनको होगी। जब तक यह स्थिति है तब तक आस्था की स्थिति है।[28]

आशा की स्थिति बने रहने तक हिन्दी पत्रकारिता से नाउम्मीद होना भी ठीक नहीं है। पत्रकार/पत्रकारिता के नाम पर कोई कितनी फ्रॉडगिरी कर सकता है। या फिर मौजूदा दौर में पत्रकारिता ऐसे मुकाम पर जा पहुंची है, जहां पत्रकारिता के नाम पर धंधा किया भी जा सकता है और पत्रकारों के लिये ऐसा माहौल बना दिया गया है कि वह धंधे में अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर धंधे को ही मुख्य धारा की पत्रकारिता मानने लगे। या फिर धंधे के माहौल से जुड़े बगैर पत्रकार के लिये एक मुश्किल लगातार उसके काम, उसके जुनून के सामानांतर चलती रहती है, जो उसे डराती है या फिर वैकल्पिक सोच के खत्म होने का अंदेशा देकर पत्रकार को धंधे के माहौल में घसीट कर ले जाती है।[29]

व्यक्तिगत से अधिक संस्थागत व्यवसायिकता :

पत्रकार धंधे के माहौल में जाता हुआ इसलिए लगता है कि स्वयं पत्रकारिता व्यवसायिक होती जा रही है। पत्रकारिता में पूंजीपतियों के बढ़ते प्रभाव के बारे में पत्रकारिता के महान आदर्श माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा था– दुख है कि सारे प्रगतिवाद, क्रांतिवाद के न जाने किन–किन वादों के रहते हुए हमने अपनी इस महान कला को पूंजीपतियों के चरणों में अर्पित कर दिया।[30]

न्यूज चौनल 'आज तक' के एंकर, पत्रकार पुण्य प्रसून वाजपेयी और आम आदमी पार्टी के नेता अरविंद केजरीवाल के बीच 'ऑफ द रिकॉर्ड' बातचीत का एक वीडियो पिछले दिनों चर्चा में था। सोशल मीडिया से लेकर न्यूज मीडिया और चैनलों पर यह वीडियो सुर्खियों में रहा। अरुण जेटली जैसे वरिष्ठ भाजपा नेताओं से लेकर कुछ न्यूज चैनल तक एंकर–पत्रकार पुण्य प्रसून पर पत्रकारिता की मर्यादा और नैतिकता लांघने का आरोप लगाते रहे। इस 'ऑफ द रिकॉर्ड' बातचीत में वाजपेयी की केजरीवाल से अति निकटता और सलाहकार जैसी भूमिका को निशाना बनाते हुए उनकी निष्पक्षता पर उंगली उठाई गई। ''आरोप लगाया जा रहा है कि वाजपेयी आम आदमी पार्टी (आप) की ओर झुके हुए हैं और चैनल के अंदर पार्टी के प्रतिनिधि या प्रवक्ता की तरह काम कर रहे हैं। इस कारण केजरीवाल के साथ उनका इंटरव्यू 'फिक्स्ड' और पीआर किस्म का है, जिसका मकसद 'आप' के नेता की सकारात्मक छवि गढ़ना है और जिसमें शहीद भगत सिंह तक को इस्तेमाल किया जा रहा है।[31]

राजनेताओं और राजनीतिक दलों के पीआर के साथ किसी पार्टी विशेष के खिलाफ काम करने के आरोप भी लगे हैं। कहा गया कि इस दिशा में काम करने के लिए मौका मिलने पर उस पार्टी विशेष के नेताओं को घेरने की कोशिश की गई। ''नमूना नंबर दो। जी न्यूज के महान बुद्धिजीवी पत्रकार पुण्य प्रसून ने डाक्टर मुरली मनोहर जोशी से पूछा अदालत का फैसला आने के बाद क्या होगा। जोशी जी ने कहा फैसला आयेगा तब देखा जायेगा, आप अभी से अफवाह और सनसनी क्यों फैला रहे हैं।[32]

निराधार साबित हुए आरोप :

पुण्य प्रसून वाजपेयी पर किसी राजनीतिक दल के साथ अथवा उसके विरुद्ध होने के आरोप अधिक दिन तक टिक नहीं सके। सम्भवतः यह उनकी ट्रेनिंग और काम के दौरान बन रही इमेज का ही नतीजा था। उन्होंने नागपुर में लोकमत से अपने करियर की शुरुआत की थी। ''संघ हेडक्वार्टर में सर–संघचालक देवरस के साथ बैठना–मुलाकात करना। कई मुद्दों पर चर्चा करना। दलितों के भीतर के आक्रोश को अपनी पत्रकारीय कलम में आग लगाने जैसे अनुभव को सहेजना। दलित युवाओं की टोली के दलित रंगभूमि के निर्माण को उनके बीच बैठकर बारीकी से समझना और नक्सलियों के बीच जाकर उनके हालातों को समझने का प्रयास। सब कुछ नागपुर में कदम रखते ही शुरू हुआ।''[33]

पुण्य प्रसून ने नागपुर के बाद पत्रकारिता का एक लम्बा सफर तय किया है। तब से जन सरोकारों का दायरा भी विकसित हुआ है। बहस का विषय हो सकता है कि इस दायरे में विस्तार का कारण बाजार भी है। ''ब्राह्मणों, गुर्जरों के आरक्षण की मांग, अभिषेक–ऐश्वर्या की शादी, दाउद, लादेन जैसे खूंखार आतंकवादियों, सरगनाओं का चेहरा, बाहुबली सांसद शहाबुद्दीन, विधायक मुख्तार अंसारी के कारनामों की कहानी या फिर छात्र नेता से डॉन बने बबलू श्रीवास्तव की पुस्तक की विश्लेषणात्मक सूचना जैसे चोरी, हत्या, दंगे–फसाद, चरित्र हनन के चित्रों एवं दृश्यों से आपकी समाचारिक मीडिया भरी पड़ी है।[34]

विवरण का विस्तार, पर लक्ष्य सुनिश्चित :

पुण्य प्रसून वाजपेयी ने हिन्दी पत्रकारिता के विकास क्रम में हर उस पहलू को छुआ है, जो समाज के किसी–न–किसी वर्ग से सम्बद्ध है। फिर भी लगता है कि उनकी पत्रकारिता का लक्ष्य बहुसंख्यक लोगों के सरोकारों से ही है। वह फिल्मी कलाकारों की बात करते समय भी इसे भुला नहीं पाते। "आमिर खान के घर के बाहर सुरक्षा पुख्ता है यानी रईसों की जमात की प्रतिक्रिया पर क्या सड़क क्या संसद हर कोई प्रतिक्रिया देने को तैयार है। लेकिन सामाजिक टकराव के दायरे में अगर देश में हर दिन एक हजार से ज्यादा परिवार अपने परिजनों को खो रहे हैं और नेता–मंत्री तो दूर पुलिस थाने तक हरकत में नहीं आ रहे हैं तो सवाल सीधा है। सवाल है कि क्या सत्ता के लिये देश की वह जनशक्ति कोई मायने नहीं रखती जो चकाचौंध भारत से दूर दो जून की रोटी के लिये संघर्ष कर रही है।[35]

जन सरोकारों का पत्रकार सदी के महानायक से बात करता है, तब भी उसके दिमाग में जनता ही रहती है। वह अमिताभ बच्चन के जिन्न वाले चरित्र से भी जन–कल्याण की सम्भावना खोजते हैं। "सत्तर के दशक का विद्रोही, अस्सी के दशक का बगावती, और नब्बे में शहंशाह और इक्कीसवीं सदी में पा, जी पा, लेकिन सवाल है कि ये सारे चरित्र जिस समाज के भीतर सिनेमाई सिलवर स्क्रीन पर जो शख्स जीता है! वो होना चाहता है। वो

शख्स साथ ही है हमारे। अमिताभ जी, तमाम पा, जिन्न चरित्रों को जीने के बाद जिन्न का ख्याल आपके जहन में आया या लगा कि समाज वैसा हो गया है?[36]

पुण्य प्रसून गुजरे जमाने के साहित्य को भी याद करते हैं, तो रूबाइयों वाली 'मधुशाला' में समाज की विसंगतियां ढूंढ़ निकालते हैं। उन्हें तकलीफ होती है कि व्यापक संदेश वाली 'मधुशाला' अंग्रेजी स्टाइल की पेंटिंग्स में सिमटती जा रही है। ''सन्नाटे में मधुशाला को इस तरह निहारना मेरे लिये गजब की अनुभूति भी थी और दर्द भी। क्योंकि मेरे लिये मधुशाला उस दौर की उपज थी जब आजादी के आंदोलन के दौर में समाज बंटा जा रहा था! तब मधुशाला सामूहिकता का बोध करा रही थी। उस युवा मन के अंदर बेचौनी पैदा कर रही थी, जो खुद को कई खेमों में बंटा हुआ समाज–वर्ग–धर्म–आंदोलन में अपने अस्तित्व को खोज रहा था। मैंने कहीं पढ़ा था, हरिवंश राय बच्चन ने पहली बार दिसंबर 1933 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शिवाजी हाल में ही मधुशाला का पाठ किया और वह दिन बच्चन का ही हो गया। हर कोई झूम रहा था और हर किसी की जुबान पर मधुशाला रेंग रही थी। लेकिन वक्त और मिजाज कैसे बदलता है! इसका अंदाजा 14, गोल्फ लिंक की दीवारों पर टंगी पेन्टिंग्स को देखकर लग रहा था।[37]

बहुआयामी है वाजपेयी की पत्रकारिता :

राजनीति, साहित्य, समाज, कृषि, अर्थव्यवस्था, आंदोलन और यहां तक कि आतंकवाद, शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र हो, जिस पर पुण्य प्रसून की लेखनी न चली हो। वे 'दिनमान' में प्रकाशित बिहार की बाढ़ वाली रिपोर्ट का जिक्र करते हैं, जिसे फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने लिखा था। पत्रकारिता में साहित्यिक पुट के बावजूद आम पाठकों तक पहुंच के मामले में इस रिपोर्ट को बेजोड़ बताया गया है। वाजपेयी ने भी सन् 2015 में चेन्नई की बाढ़ की रिपोर्ट की है। बिजली है नहीं। पीने का पानी मिल नहीं रहा। सड़क पर पानी है। घरों में पानी के साथ सांप–बिच्छू भी हैं। अस्पताल डूबे हुये हैं। स्कूल बीते 15 दिनों से बंद हैं। फ्लाइट की आवाजाही ठप है। बच्चों के लिये दूध नहीं है। आसमान से फेंके जाते खाने पर नजर है तो जमीन पर किसी नाव या बोट का इंतजार है। 300 से ज्यादा की मौत हो चुकी है। 1240 झोपड़–पट्टियों में रहने वाले नौ लाख से ज्यादा लोग तिल–तिल मर रहे हैं। यह चेन्नई है।[38]

उपर्युक्त लम्बा उद्धरण ऐतिहासिक और आर्थिक सम्पन्नता के बावजूद प्राकृतिक आपदा के समक्ष चेन्नई के लाचार हो जाने का खाका सामने रख देता है। हिन्दी साहित्य के 'रिपोर्ताज' विधा् का यह बेहतर उदाहरण भी हो सकता है। नवम्बर–दिसम्बर, 2015 में चेन्नई की बाढ़ का जिक्र करने वाले पुण्य प्रसून जनवरी, 2016 में पठानकोट पर आतंकी हमले पर भी लिखते हैं। 'क्या इतिहास को पढ़ने–समझने के बाद मोदी सरकार इतिहास रचने की बेताबी में जा फंसी? एक सिर के बदले दस सिर का जिक्र करने वाली सुषमा स्वराज भी मुंबई हमलों के दोषी लखवी के जेल से छूटने पर पाकिस्तान से कोई बातचीत ना करने को कहती हैं और इसके बाद इस्लामाबाद जाकर कैंडल लाइट डिनर करने से नहीं चूकतीं।[39]

पुण्य प्रसून के लेखन में देश की सीमाओं की चिंता है, देश अंदर जवानों के साथ किसानों की परवाह भी दिखाई देती है। उनके मन में यह सवाल उभरता है कि कोई भी सरकार
कृषि को लेकर एक समग्र नीति क्यों नहीं बनाती। "नेहरू से लेकर मोदी तक शायद ही कोई प्रधानमंत्री ऐसा रहा जिसने अमेरिका, ब्रिटेन ही नहीं बल्कि दुनिया के किसी भी देश में

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
IJARST
ISSN: 2457-0362

जाकर यह जानने की कोशिश की हो खेती पर टिके भारत में कृषि अर्थव्यवस्था को कैसे मजबूत किया जा सकता है। यह ना तो नेहरू के दौर में हुआ जब जीडीपी में कृषि अर्थव्यवस्था का योगदान साठ फीसदी अर्थव्यवस्था का योगदान सत्रह फीसदी पर आ चुका है। लेकिन था और ना ही मौजूदा वक्त में हो रहा है, जब जीडीपी में कृषि नेहरू के दौर से मोदी के दौर तक में खेती पर निर्भर जनसंख्या की तादाद कम नहीं हुई है, बल्कि बढ़ी है। जबकि खेती की जमीन सिकुड़ी है।[40]

देश की सीमाओं, कृषि और कृषकों के साथ अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर वे लगातार चिंतन करते हैं। पुण्य प्रसून वाजपेयी ने इस 'जन–स्वर' का हमेशा ख्याल रखा है। पत्रकारिता की तमाम सीमाओं और पत्रकारों की दिक्कतों के बावजूद उम्मीदें समाप्त नहीं हुई हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पुण्य प्रसून समकालीन समय के सशक्त हस्ताक्षर हैं। हिंदी पत्रकारिता को उनका योगदान उल्लेखनीय है। वे नई पीढ़ी के लिए प्रेरणा के आधार हैं और समकालीन पीढ़ी के लिए विचार के नित नूतन अवसरों को सामने रखते हैं। वे सच्चे अर्थो में जनसरोकारों के पत्रकार हैं।

सन्दर्भ :–

1. **अरविन्द मोहनः** 'मीडिया, शासन और बाजार' की भूमिका से (वाग्देवी प्रकाशन–2006)
2. पुस्तक 'एंकर रिपोर्ट' के फ्लैप से (राजकमल प्रकाशन–2006)
3. 'एंकर रिपोर्ट' के फ्लैप से (राजकमल प्रकाशन–2006)
4. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** हिन्दी न्यूज चैनल की पत्रकारिता (punya prasun vajpai on facebook-13 अगस्त, 2012)
5. **प्रो. दिलीप सिंहः** हिन्दी भाषा चिन्तन (वाणी प्रकाशन–2009)
6. **अरविन्द मोहनः** 'मीडिया, शासन और बाजार' की भूमिका से (वाग्देवी प्रकाशन–2006)
7. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** पुस्तक 'ब्रेकिंग न्यूज' के आरंभ से (वाणी प्रकाशन–2006, आवृत्ति–2010)
8. **प्रो. दिलीप सिंहः** हिन्दी भाषा चिन्तन (वाणी प्रकाशन–2009)
9. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** हिन्दी न्यूज चैनल की पत्रकारिता http://prasunvajpai.itzmyblog.com (13 अगस्त, 2012)
10. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** भूमिका (एंकर रिपोर्टर, राजकमल प्रकाशन–2006)
11. **प्रो. दिलीप सिंहः** हिन्दी भाषा चिन्तन (वाणी प्रकाशन–2009)
12. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** तकनीकी विस्तार ने हिन्दी की सीमा तोड़ी (http://prasunvajpai-itzmyblog-com– 14 सितम्बर, 2011)
13. **अरुण कुमार भगतः** हिन्दी पत्रकारिता की भाषा और उसका बदलता चरित्र (samachar4india-com–14 सितम्बर, 2014)
14. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** भाषा के लिए बेचैनी होनी चाहिए (medianter–12 सितम्बर, 2015)
15. **समरेश वाजपेयीः** रवीश कुमार से ट्यूशन क्यों नहीं ले लेते पुण्य प्रसून वाजपेयी (mediakhabar-com–30 अप्रैल, 2015)
16. **समरेश वाजपेयीः** रवीश कुमार से ट्यूशन क्यों नहीं ले लेते पुण्य प्रसून वाजपेयी (mediakhabar-com–30 अप्रैल, 2015)

17. **अरुण कुमार भगतः** हिन्दी पत्रकारिता की भाषा और उसका बदलता चरित्र (samachar4india-com–14 सितम्बर, 2014
18. **अरुण कुमार भगतः** हिन्दी पत्रकारिता की भाषा और उसका बदलता चरित्र (samachar4india-com–14 सितम्बर, 2014
19. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** तकनीकी विस्तार ने हिन्दी की सीमा तोड़ी (http://prasunvajpai-itzmyblog-com–14 सितम्बर, 2011)
20. **अरुण कुमार भगतः** हिन्दी पत्रकारिता की भाषा और उसका बदलता चरित्र (samachar4india-com–14 सितम्बर, 2014
21. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** करियर के पहले सम्पादक ने सिखाया 'पत्रकारिता जीने का तरीका है' (jansattaen press-net)
22. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** भाषा के लिए बेचैनी होनी चाहिए (medianter–12 सितम्बर, 2015)
23. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** करियर के पहले सम्पादक ने सिखाया 'पत्रकारिता जीने का तरीका है' (jansattaexpress.net)
24. **अच्युतानंद मिश्रः** इतिहास संरक्षण का विनम्र प्रयास, पुस्तकरू पत्रकारिता के युग निर्माता प्रभाष जोशी (संत समीर, प्रभात प्रकाशन–2008)
25. **डॉ0 योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'–** हिन्दी पत्रकारिताः महानगर से ग्रामीण अंचलों तक, पुस्तक अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्यः प्रधान सम्पादक मीरा गौतम (वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण–2008)
26. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** क्योंकि न्यूज चैनलों के लिए नक्सली ब्रांड नहीं हैं (http://prasunvajpai-itzmyblog–com–15 अप्रैल, 2010)
27. **मंजुला राणाः** दसवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिक सौहार्द (वाणी प्रकाशन–2008)
28. **स.ही. वात्स्यायन अज्ञेयः** अज्ञेय रचना सागर मोती और सीपियां (प्रभात प्रकाशन–2011)
29. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** पत्रकारिता के नाम पर कोई कितनी फ्रॉडगिरी कर सकता है ? (http:// prasunvajpai-itzmyblog-com–25 जुलाई, 2013)
30. **कृष्ण बिहारी मिश्रः** पत्रकारिता इतिहास और प्रश्न
31. **नीषा यादवः** tehelkahindi, volume 6 पेनम 6–31 मार्च, 2014
32. हम संतन से का मतलब (kmmishra-wordpress-com) – 02 अक्टूबर, 2010

33. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** करियर के पहले सम्पादक ने सिखाया श्पत्रकारिता जीने का तरीका है' (jansattaexpress-net)

34. **डॉ. धीरेंद्र पाठकः** वर्तमान परिवेश में पत्रकारिता का लक्ष्य (mediakamagic-blogspot-पद 27 नवम्बर, 2009)

35. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** मोदी के ब्रांड अंबेसडर ने ही मोदी सरकार को कठघरे में खड़ा कर दिया (prasunvajpai-itzmyblog-com–24 नवम्बर, 2015)

36. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** अमिताभ बच्चन से साक्षात्कार (prasunvajpai-itzmyblog-com–17 नवम्बर, 2009)

37. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** दिल्ली का गोल्फ लिंक, मधुशाला कैनवास और बच्चन परिवार (prasunvajpai-itzmyblog-com–14 दिसम्बर, 2009)

38. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** पानी पानी रे (prasunvajpai-itzmyblog-com–03 दिसम्बर, 2015)

39. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** दिल्ली इस्लामाबाद के बीच पठानकोट (prasunvajpai-itzmyblog-com–05 जनवरी, 2016)

40. **पुण्य प्रसून वाजपेयीः** कृषि इकॉनामी मोदी की प्राथमिकता में क्यों नहीं (prasunvajpai-itzmyblog-com– 30 सितम्बर, 2015)